प्रवचन नं. १६ गाथा-१८-१९ शुक्रवार, दिनाङ्क ३१-०३-१९६६
चैत्र शुक्ला ११, वीर संवत् २४९२

यह इष्टोपदेश है। इसकी १८वीं गाथा चलती है। यहाँ सर्वज्ञ भगवान तीर्थंकर परमात्मा ने शरीर और आत्मा भिन्न कहे हैं और हैं। यहाँ कहते हैं कि यह शरीर ही तेरी चीज़ नहीं है तो इससे तुझे कुछ लाभ हो-ऐसा है नहीं। धर्म का लाभ तो अन्दर आत्मा के पवित्र स्वभाव की दृष्टि करने से धर्म लाभ होता है। शरीर से कुछ नहीं होता। यह शरीर ही परद्रव्य है। यह तो अजीव, मिट्टी, धूल, पुद्गल है। इसकी बात जरा इसकी रुचि छुड़ाने को यह बात करते हैं। भाई! शरीर की रुचि छोड़! वह अजीवतत्त्व है, पुद्गल है, रूपी है, मिट्टी और इस चमड़ी से लिपटा हुआ माँस-हड्डियों का एक पुतला है। वह कहीं तेरी चीज़ नहीं है और तू उस चीज़ में रुचि करता है तो तेरे चैतन्य की रुचि टलती है। समझ में आया? ज्ञानानन्दस्वरूप....

मुमुक्षु : दोनों की साथ में हो सकती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों की साथ में हो ही नहीं सकती। इसके लिए तो यहाँ बात करते हैं। आत्मा ज्ञानानन्द सिद्धस्वरूप, परमात्मा जैसे अरिहन्त हुए, वैसा ही इस आत्मा का अन्तर स्वरूप है। ज्ञान और आनन्द से भरपूर आत्मा पदार्थ है। उसकी रुचि छोड़कर और इस शरीर की तू रुचि करता है, तो शरीर तो अपवित्र और तू तो पवित्र का धाम! तुझे दोनों का मेल किस प्रकार होता है?-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तू तो ज्ञानानन्द, केवलज्ञान आदि अनन्त आनन्द की गाँठ (पिण्ड) आत्मा है। प्रभु परमात्मा केवली ने आत्मा तो शुद्ध आनन्दकन्द पवित्र धाम देखा है। उसके साथ तुझे इस अपवित्रता की प्रीति कैसे है? समझ में आया?

मुमुक्षु : इकट्ठा है न, इसलिए...

पूज्य गुरुदेवश्री : इकट्ठा बिल्कुल नहीं, यही यहाँ कहते हैं। मूँग और खिचड़ी, उसमें भी मूँग की दाल और चावल दोनों भिन्न-भिन्न हैं।

मुमुक्षु : पकाने के समय एक हो जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी एक होते ही नहीं। मूँग के रजकण भिन्न और चावल के भिन्न। प्रत्यक्ष जड़-मिट्टी है। इसलिए तो यहाँ बात करते हैं कि भाई! तुझे हित करना हो तो यह शरीर जड़ है, मिट्टी है, अजीव है, मूर्त है, इसकी रुचि छोड़ कि यह मुझे लाभदायक है और मुझे हितकर है, यह रुचि छोड़। समझ में आया? आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञानानन्द सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने आत्मा पवित्र देखा है। वह पवित्र तू ही है। उसकी अन्तररुचि कर तो तुझे शान्ति और धर्म होगा। इसकी (शरीर की) रुचि करने से क्या (होगा)? यह कहते हैं, देखो!

अर्थ – जिसके सम्बन्ध को पाकर-.. जिसके सम्बन्ध को पाकर अर्थात् इस शरीर के सम्बन्ध को पाकर आत्मा को **जिसके साथ भिड़कर..** इस शरीर के साथ में कोई भी बाहर की चीज़ जोड़ दो तो **पवित्र भी पदार्थ अपवित्र हो जाते हैं,..** आत्मा के साथ रहा हुआ शरीर, इस शरीर के साथ किसी भी चीज़ का सम्बन्ध करो तो उसे अपवित्र बनायेगा, ऐसा यह शरीर है। दाल, भात, सब्जी, यह मेसूर, लड्डू डालो यहाँ से, ऐसे थूक-धूल बनायेगा, छह घण्टे में विष्ठा बनायेगा, वह यह शरीर है।

मुमुक्षु : आत्मा तो अनादि का साथ में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि का साथ में कब था? यह शरीर भिन्न है, वह भी भिन्न है। इसके पहले दूसरा शरीर था, तीसरा था। उसके साथ में कब (था?) भिन्न-भिन्न शरीर हैं। ये तो भिन्न-भिन्न हैं। अनन्त बार मिले। आत्मा तो वह का वही है और ये भिन्न-भिन्न हैं। समझ में आया?

कहते हैं, जिसका सम्बन्ध पाकर अर्थात् क्या? इस शरीर का सम्बन्ध पाकर **जिसके साथ भिड़कर..** जिसके साथ जुड़ने से **पवित्र भी पदार्थ अपवित्र हो जाते हैं,..** कहो, दाल, भात, सब्जी, मेसूर, वस्त्र-वस्त्र अच्छे से अच्छे ऊँचे होते हैं, पाँच सौ-पाँच सौ के वस्त्र, हजार-हजार के बनाते हैं न? अभी देखो न! कैसे बड़े होते हैं-क्या कुछ ५०-५२ रुपये का वार। सेलालीन, अपने को नाम भी आते नहीं। यह सब लड़के बहुत करते हैं। एक व्यक्ति कहता था, तीन सौ रुपये का कपड़ा है। एक क्या कहलाता है तुम्हारा? नीचे का, पतलून और ऊपर का वह। कितने का? तीन सौ रुपये का, तीन सौ रुपये का। दर्जी

का कितना ? पैंतीस रुपये की सिलाई। बाप के पास पैसे पड़े हैं, क्या करें तब ? व्यर्थ में प्रयोग तो करें या नहीं ! आहा ! तीन सौ रुपये। तीन सौ रुपये में तो पहले बाँध देते। बेचारी विधवा महला को डेढ़ रुपये-दो रुपये हो, ब्याज में, कोट में। यह तो वह तीन सौ रुपये का कपड़ा। एक-एक ही कपड़ा, हों ! मात्र एक जोड़ी-एक नीचे का एक ऊपर का।

मुमुक्षु : सुख बढ़ा न !

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी (सुख) बढ़ा नहीं, कहते हैं। व्यर्थ का दुःखी है। ऐसे कपड़े भी शरीर के सम्बन्ध से ऐसी दुर्गन्ध मारते हैं, दुर्गन्ध मारते हैं। समझ में आया ? इसमें मेसूर डाला, मोसम्बी का पानी डाला, मलिन पेशाब-विष्ठा होगी। यह (शरीर) विष्ठा उपजाने की मशीन है। यह कहते हैं, देखो न ! बापू ! रुचि छोड़, रुचि। यह (शरीर) अजीव है-जड़ है, भाई ! यह मिट्टी है, तू नहीं, तेरा नहीं, तुझमें नहीं और तू इसमें नहीं। दोनों चीज़ें भिन्न हैं, भाई ! इसलिए यह बात करते हैं। समझ में आया ? **पवित्र भी पदार्थ अपवित्र हो जाते हैं,..**

वह शरीर हमेशा अपायों,.. अन्दर नुकसानकारक है, कहते हैं। है न अपाप ? चाहे जैसी चीज़ डालो, उसे छुआओ, तुरन्त गन्ध मारेगी, गन्ध मारती है, लो ! दुर्गन्ध... दुर्गन्ध। उसे तू भोग के साधन मानकर और मिथ्यादृष्टिरूप से शरीर (मेरा) मानकर उसमें-भोग में रस लेता है, बापू ! तेरे आत्मा की हिंसा होती है। समझ में आया ? मिथ्यात्वभाव से शरीर मेरा-ऐसा मानकर; जो शरीर जड़ का है, उसे 'मेरा' मानकर उसके भोग की वासना में प्रेम करता है, भाई ! यह रुचि करना मिथ्यात्वभाव है। उसमें-भोग में सुख नहीं है; आत्मा में सुख है। आत्मा में सुख है-उसकी रुचि कर। इसके भोग में सुख नहीं, यह तो दुःख का कारण है। देखो !

शरीर हमेशा अपायों,.. अनर्थ का कारण है, **उपद्रवों,..** उपद्रव का कारण है। शरीर क्षण में ऐसा हुआ, अमुक हुआ। मोहनभाई ! क्यों जयचन्दभाई ? यह सत्य बात आर्तध्यान के कारण। वह नहीं परन्तु शरीर ऐसा कहते हैं कि आत्मा के हित से यह उल्टी चीज़ है, ऐसा कहते हैं। इसलिए इसकी रुचि छोड़ना-ऐसा कहते हैं। यह किसलिए कहते हैं ? यह जड़ है। भगवान परमात्मा कहते हैं कि भाई ! यह जड़ मिट्टी है और तू तो आत्मा

है। दो चीज़ पूरब-पश्चिम का अन्तर अत्यन्त भिन्न जाति है। उसकी रुचि से आत्मा की रुचि टल जाती है।

आत्मा आनन्दमूर्ति! सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा वीतराग की मूर्ति आत्मा देखा है। तेरी दशा में विकार होता है, वह तो क्षणिक उपाधि है। अन्तरस्वभाव तो वीतराग है। भाई! उसमें नजर करनी चाहिए, उस आत्मा को अपना समीप भाव करना चाहिए। ऐसी रुचि छोड़कर यह शरीर मिट्टी, हड्डियाँ और चमड़ा ऊपर लपेट, उसे मेरा मानकर तू दुःखी हो रहा है। यह अनर्थ का कारण है। रुचि-रुचि छोड़ने की बात करते हैं, हों! एकत्वबुद्धि छोड़, ऐसा कहते हैं। जड़ और चैतन्य की एकत्वबुद्धि छोड़। समझ में आया?

उपद्रवों,.. क्षण-क्षण में कुछ (होता है)। यह हुआ, धूल हुआ और अमुक हुआ। चौबीस घण्टे की लगायी हो। आँख में ऐसा होता है। जड़ रजकण अनन्त परमाणुओं का पिण्ड मिट्टी है। काया तो अजीव है न, तू तो जीव है, तू अरूपी है, यह रूपी है, यह मूर्त है तू अमूर्त है; तू आनन्द है, यह उपद्रव का घर है। भेदज्ञान कराते हैं। आहाहा! उपद्रव का घर है।

झंझटों,.. एक व्याधि मिटावे वहाँ दूसरी; दूसरी मिटे वहाँ तीसरी। उपाधियाँ चला ही करती हैं और शरीर के जो रागी हों, ठीक से साफ-सूफ करके रहते हों और ऐसे नहा-धोकर ठीक से (रहते हों), उन्हें तो घड़ीक में कुछ ऊँ..हूं... हो गया, मिट्टी चिपटी तो अमुक हो गया, अमुक हो गया। बेचारे हैरान-हैरान। पोपटभाई! साफ-सूफ, ऐसे रुपये-रुपये के साबुन। पहले बारह आने में आता था हमारे समय में अच्छा-अच्छा। अब बढ़ा होगा। क्या पता पड़े? पहले अच्छे में अच्छा बारह आने का साबुन (आता था)। तीन साबुन की पेटी सवा दो रुपये की आती थी। वहाँ दुकान-धन्धा था न! वहाँ पालेज में। समझ में आया? अभी तो बड़ा आता होगा। होली भी वहाँ उससे क्या? कहते हैं, यह शरीर तो मिट्टी है। कितना साफ करेगा? उठकर धोये कादव निकलेगा। उसे साफ करके अच्छा (रखूँ)... आहा! सुन्दर रखे। वह तो धूल, माँस का पिण्ड है। यहाँ रुचि छुड़ाते हैं, हों! वह तू नहीं, तेरी चीज भिन्न है, भाई! आत्मा है, भाई! तू आत्मा है न! वीतराग कहते हैं कि हमारी नात का और हमारी जाति का तू आत्मा है। समझ में आया? ऐसे आत्मा की तुझे

रुचि नहीं होती और इस उपद्रवकारी, झंझटकारी ऐसे शरीर का तुझे प्रेम! क्या बोले कोई? क्या कहा?

मुमुक्षु : वीतराग की जाति का तू है, ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग की जाति का है यह। किसकी जाति का है? 'सर्व जीव हैं सिद्ध सम' सुना नहीं?

मुमुक्षु : बनिये की जाति का नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : बनिया कैसा बनिया था? यहाँ बनिया कैसा और ढ़ेड कैसा? वह तो आत्मा वीतराग की जाति का है। 'सर्व जीव है सिद्ध सम' सुना नहीं? ऊपर लिखा है, देखो! तुम्हारे पीछे। ('जो समझे वे होंय') ये शब्द मुखाग्र कर रखे हैं। कहा था कल प्रकाश को, यहाँ रहे, यहाँ बराबर ठीक से उलहाना सुनने का। नहीं तो ठीक नहीं रहे। ऐ.. मोहनभाई! वहाँ फिर शोर मचायेगा, कहीं बम्बई ले जाओगे पन्द्रह दिन। ऐसे से ऐसे हैरान कर डालेगा सबको। यह शरीर ही मिट्टी, धूल है। कहते हैं कि रुचि छोड़, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ गिर गया है। परन्तु किया किसने? इसने-जीव ने किया है। यह तो यहाँ कहते हैं। कहाँ से कहाँ गिरे? अध्धर से गिरता है? भगवान कहते हैं कि तूने तेरे आत्मा का प्रेम छोड़कर शरीर की रुचि तूने की है, करे कौन? कर्म-बर्म कराते हैं? ईश्वर है कोई? ईश्वर-विश्वर कोई कर्ता-फर्ता है नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्षण-क्षण में करे नये जन्म का। नया-नया विकार करे और रुचि करे-यह मेरा। यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है, उसकी रुचि भूल जाता है। रुचि नहीं करता, श्रद्धा-विश्वास नहीं करता। मुझमें आनन्द है, शान्ति है, यह विश्वास नहीं करता। धूल में आनन्द है और उसमें इस मिथ्यादृष्टि का विश्वास शरीर में पड़ गया है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया?

गृहस्थाश्रम में तीर्थंकरादि थे परन्तु शरीर के प्रति उनकी रुचि नहीं थी। नहीं, यह हम नहीं, यह हम नहीं, हों! हमारा आत्मा आनन्दस्वरूप है। श्रेणिक राजा संसार में थे या

नहीं ? श्रेणिक राजा। भगवान के समय में क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त हुए, तीर्थंकर गोत्र बाँधा। पहले नरक में हैं, वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होंगे। भान था अन्दर - यह नहीं, शरीर नहीं, यह राज नहीं, स्त्री-कुटुम्ब नहीं; हम तो आत्मा हैं, हमारा आत्मा आनन्दमूर्ति है। समझ में आया ?

ऐसा सम्यग्दर्शन कराने के लिये यह बात करते हैं। आहाहा! तेरा आत्मा... भाई! दोपहर को चलता नहीं ? शुद्ध चैतन्यमूर्ति है न, प्रभु! आहाहा! तुझमें तो सुख का पूर पड़ा है न, नाथ! अतीन्द्रिय आनन्द का पूर तू है, भगवान परमात्मा कहते हैं। अन्दर में आत्मा के शान्ति के रस में चैतन्य के पूर में पड़े हैं, उसकी तुझे रुचि नहीं, उसका तुझे विश्वास नहीं, उसका तुझे भरोसा नहीं और इस जड़-मिट्टी के भरोसे तू जड़ के भरोसे भूल जाता है। आता है न ? सेठिया कहते हैं न ? सेठिया का गायन नहीं ? जड़ के भरोसे भूल जाता है। चेतन भोला। अरे! चेतन भोला / मूर्ख! इस जड़ के भरोसे तेरा जीवन जाता है, भाई! तेरा चैतन्य जीवन अन्दर अलग है। समझ में आया ?...

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि भाई! तेरा आत्मा अन्दर पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्यस्वरूप है और यह देह है मिट्टी, हड्डियाँ, चमड़े का पिण्ड है। समझ में आया ? तू अन्दर आत्मा है, उसमें तो ज्ञान और आनन्द भरा हुआ है।

मुमुक्षु : कहाँ छुप गया होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस शरीर के प्रेम में शोर मचाता है न, इसलिए छुप गया है वह ? शरीर की रुचि पूरे रात और दिन चौबीस घण्टे। इस शरीर को कुछ होवे तो मुझे हुआ, शरीर को अच्छा होवे तो मुझे अच्छा हुआ। धूल में वह तो मिट्टी है, हड्डियाँ हैं। वह कुछ रूपवान (हो) तो मैं रूपवान, वह काला तो मैं काला, रोग तो मैं रोगी। मूढ़ है ? शरीर की अवस्था जड़ की उसमें तुझे कहाँ से आया वह ? तू तो भिन्न चीज़ है। ऐ.. पोपटभाई!

भगवान परमात्मा वीतरागदेव कहते हैं कि भाई! तू इस शरीर में रुचि करके पड़ा है, वह तो माँस और हड्डियाँ तथा चमड़ा है। ऊपर यह चमड़ा लिपटा हुआ दिखता है। एक बाल जितना, गन्ने का छिलका जितना छीलकर खड़ा रखो तो मक्खियाँ ऊपर भिनभिनायेंगी। ऐसा चमड़ा और हड्डियाँ, वह जड़तत्त्व है, प्रभु! तेरा तत्त्व तो अन्दर अरूपी ज्ञानघन आत्मा

है। आत्मा तो अरूपी अनन्त आनन्द का कन्द है। उसकी रुचि छोड़कर इन मिट्टी, हड्डियों की रुचि करता है, मूढ़ है ? यहाँ ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो मूल में चोट डालते हैं। समझ में आया ? सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ दिव्यध्वनि में सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण में भगवान की वाणी कहती, इन्द्रों को वाणी ऐसा कहती थी। इन्द्र तो समकिती हैं, ज्ञानी हैं। यह तो अज्ञानी को कहते हैं, बापू! यह हड्डियाँ और चमड़े का पिण्ड वह तेरा ? अन्दर कोई चीज़ नहीं तेरी ?

विघ्नों,.. यह शरीर तो विघ्नों का घर है। यह विघ्न का घर। घड़ीक-घड़ीक में रोग आवे, घड़ीक में.. रह जाये, पक्षघात हो जाये, पैर रह जाये, खाली चढ़ जाये, यह धूल हो जाये, शूल चढ़े यह मिट्टी है, बापू! इसमें तुझे विघ्न में रुचि क्यों होती है ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? **एवं विनाशों कर सहित हैं,..** घड़ीक में फूं हो जाये यह.. यह.. यह.. यह.. क्या हुआ ? भाई! डॉक्टर खड़ा था और नाड़ी देखने को ऐसे पकड़कर ? चला गया। नाड़ी हाथ में नहीं आती। गया लगता है। मरकर गया नीचे। दूसरा क्या ? राग का ऐसा प्रेम, धूल का-मिट्टी का प्रेम, उसे चैतन्यस्वामी का प्रेम नहीं। आनन्दकन्द शुद्ध चैतन्य सहजात्मस्वरूप की जिसे सम्यक् रुचि नहीं, उसे ऐसी रुचि के फल में तो नरक और चार गति में भटकता है, कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें ? यहाँ तो पहला शरीर पर ही चोट मारी है, फिर कहेंगे लक्ष्मी-बक्ष्मी की बातें, हों!

अत: उसको भोगोपभोगों को चाहना व्यर्थ है। ऐसे शरीर का उपभोग करूँ, भोग लूँ, बारम्बार उपभोग करूँ, वह तो व्यर्थ है। धूल में, मिट्टी में तुझे क्या है ? भाई! समझ में आया ? आठ वर्ष की लड़की हो, सम्यग्दर्शन पावे तो उसे आत्मा में आनन्द भासित हो, भले वह विवाह करे परन्तु उसे कहीं आनन्द भासित नहीं होता। कहीं आनन्द नहीं है, मेरा आनन्द मेरे पास है। वे पति और पत्नी भले रहें शामिल, अन्दर में उदास हैं। हमारी चीज़ तो यहाँ है, हों! समझ में आया ?

सीताजी, रामचन्द्रजी जैसे देखो! ऐसे देखो तो पति-पत्नी दिखायी दें। अन्दर में आत्मा हमारा आनन्द तो हमारे पास है, हों! इस पति से हमें आनन्द है, यह तीन काल में नहीं है, ऐसा मानती हैं। आहाहा! समझ में आया ? और पति, पत्नी से आनन्द है, ऐसा नहीं

मानता। धर्मी, जिसकी आत्मदृष्टि हुई है, जिसे आत्मज्ञान प्रगट हुआ है, हम तो आत्मा हैं। 'सिद्ध समान सदा पद मेरौ' सिद्धस्वरूप परमात्मा जैसे शरीररहित सिद्ध हुए, वैसा ही यह आत्मा अन्दर है। यह विकार से अन्दर ढँक गया मानता है। वस्तु भगवान परमानन्द मूर्ति है। उसका जिसे प्रेम जगा, उसे हड्डियों का प्रेम अन्दर गृहस्थाश्रम में रहने पर भी नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया?

विशदार्थ – जिस शरीर के साथ सम्बन्ध करके पवित्र एवं रमणीक भोजन वस्त्र आदिक पदार्थ अपवित्र घिनावने हो जाते हैं,.. ऐसा शरीर परन्तु यदि इसे मैसूर छुआओ तो थूक हो जाता है। चार सेर घी पिलाया हुआ मैसूर, उसका टुकड़ा मुँह में डालो तो थूक होता है, कुत्ते की जूठन। मुँह फाड़कर नीचे उतारने को काँच में देखो तो खबर पड़े क्या खाता हूँ। मैसूर होवे, हों! बढ़िया। यह मैसूर कहते हैं न? चार सेर घी पिलाया हुआ, ऐसा होवे जाली वाला। एक रुपया भार उसे... यहाँ पूरा टुकड़ा तो कुछ प्रविष्ट न हो। पिघलेगा या नहीं दो, चार मिनिट में? वह पिघले कितना? कुत्ते की जूठन जैसा हो पश्चात् उतरे। मैसूर खाता हूँ। मुँह फाड़कर दर्पण में देखना। कुत्ते की जूठन है। तेरी कल्पना है, बापू! वह वस्तु जड़, मिट्टी, धूल है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : याद आया करे। मूढ़ है न! यही यहाँ कहते हैं, भाई! तेरे आत्मा में आनन्द का स्वाद है, भाई! तू सच्चिदानन्दस्वरूप है। तेरे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा जिसे अन्दर कहते हैं, यह तो हड्डियाँ हैं, यह वाणी है, कर्म जड़ मिट्टी है, पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह तो विकार आस्रव है। उनसे (भिन्न) जो चैतन्यतत्त्व है, उसमें तो अतीन्द्रिय आनन्द है। भाई! तुझे उसकी रुचि नहीं होती, उसके स्वाद की तुझे दरकार नहीं, तुझे आत्मा के स्वाद का प्रेम नहीं। भाई! इस जड़ की हड्डियों में प्रेम करके तेरा काल वृथा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वाद कब आया था? जाना कि यह मैसूर मीठा है, ऐसा ज्ञान हुआ। मीठा तो जड़ में रहा, मीठा यहाँ आत्मा में घुस जाता है? मीठा तो जड़ है। आत्मा

में घुस जाये तो आत्मा जड़ हो जाये। आत्मा तो अरूपी है। जानता है कि यह मीठा है, यह मीठा है। मैं मीठा हूँ? परन्तु इसे भान नहीं होता यह क्या है और मैं कौन हूँ?

मुमुक्षु : अच्छा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा क्या लगे? मूढ़ मानता है। अच्छा क्या लगता था? ऐई! यहाँ तो जड़ से भगवान आत्मा भिन्न है, उसकी श्रद्धा कराते हैं। बापू! तुझे श्रद्धा नहीं। तुझे तेरा भरोसा नहीं, हों! और इस जड़ के भरोसे तेरा काल चला जाता है, बापू! आहाहा! ऐसा अनन्त काल में मनुष्य देह मिला, उसके भरोसे भगवान तो चला जाता है, बापू! तेरा काल जाता है, हों! ऐसा कहते हैं, देखो!

शरीर के सम्बन्ध से पवित्र पदार्थ—यह मैसूर, यह बढ़िया-बढ़िया वस्त्र, लो न! रेशमी वस्त्र बढ़िया पाँच-पाँच हजार के परन्तु इसे (शरीर को) स्पर्श कराओ तो पसीना गन्ध मारता है। इसे स्पर्श कराओ तो गन्ध मारता है, ऐसे दीवार को स्पर्श कराओ तो गन्ध नहीं मारता। इसे स्पर्श कराओ तो गन्ध मारता है ऐसे वस्त्र। ऐसा शरीर अपवित्र है और तू पवित्र का धाम आनन्दकन्द है। ऐसे पवित्रता का प्रेम छोड़कर इसके प्रेम में, रुचि में क्यों पड़ा है? ऐसा कहते हैं। एकत्वबुद्धि की बात करते हैं, हों! धर्मी को जरा आसक्ति राग हो, परन्तु यहाँ तो वह मेरा और उसमें मुझे सुखबुद्धि है, उसमें से मुझे सुख होता है, बापू! तेरी मिथ्याश्रद्धा है। तूने जड़ में आत्मा को माना, चैतन्य को भूल गया। आहाहा!

जिसके सम्बन्ध के साथ पवित्र रमणीक भोजन—रोटी, दाल, भात, पूरणपोली, ऐसा। कहो, समझ में आया? गर्म-गर्म पूरणपोली निकली हो और घी दो सेर-चार सेर पड़ा हो तपेले में, उसमें एकदम डाले और उसमें डालकर डूबोकर खाये। खाने के साथ विष्टा हो। यह विष्टा की मशीन है, यह अमृत की मशीन नहीं है। भगवान आत्मा अन्दर अमृत की मशीन है। आहाहा! आत्मा प्रभु, उसकी तू अन्तर एकाग्रता कर। आत्मा में एकाग्रता कर, तुझे आनन्द आयेगा। ऐसा आनन्द आयेगा कि जैसा सिद्ध को आनन्द (आता है), वैसा तू है। ऐसी रुचि छोड़कर इस धूल में, भोग में, मिट्टी में रुचि करता है, बापू! तेरा काल वृथा जाता है। समझ में आया? कहते हैं न, देखो!

पदार्थ अपवित्र घिनावने हो जाते हैं,.. ऐसे इसे स्पर्शित थूक, जो खाया हो ऐसे

मुँह में पड़ा हो, फिर उतारे (निगले), उतारने से पहले ऐसे बाहर निकले, गले में उतारने से पहले। मैसूर, दाल, भात, रोटी यह खाते हैं या नहीं? यह तेरे मुँह में पड़ने (के बाद), (गले में) उतारने से पहले जरा एक बार बाहर निकाल ले तो खबर पड़े कि यह क्या गले उतरता है। कुत्ते की वमन है। व्यर्थ की होली करके, रुचि करके एकाकार (होकर आत्मा को) भूल जाता है। आत्मा क्या और यह क्या, भूल जाता है। कैसे होगा फावाभाई? अच्छा मैसूर का टुकड़ा हो और सालमपाक होवे तो? सूरत की बर्फी। लो! तुम्हारे सूरत की बर्फी बहुत अच्छी। कहते हैं नहीं। धूल में भी नहीं थी बर्फी अब। बर्फी, विष्टा का पूर्व रूप है। आहाहा! पूर्व रूप। आहा!

यहाँ तो शरीर और आत्मा दोनों भिन्न हैं, ऐसी श्रद्धा कराते हैं। समझ में आया? उस पर द्वेष नहीं कराते, हों! आहाहा! बापू! वह तो रजकण है न, भाई! बहुत रजकण एकत्रित हुए। गन्ध मारे, यहाँ सड़े,... वह क्या कहलाता है? वह रोग होता है। कैंसर। आहा! यह कहाँ अमृत का पिण्ड था। भाई! यह तो मिट्टी है न! पुद्गल है न! रूपी है न! मूर्त है न! अजीव है। तू चैतन्य है न! अरूपी है न! आनन्द है न! बापू! तुझे तेरा प्रेम नहीं होता और इसकी (जड़ की) रुचि तुझे होती है, तेरा समय चला जाता है, भाई! ऐसा कहते हैं। ऐ.. पोपटभाई! आहाहा! इस्त्री (किये हुए) टाइट वस्त्र ऐसे ठीक से पहने। मुर्दे को शृंगार करना। यह मुसलमान नहीं? मर जाने के बाद मुर्दे को नहलाते हैं। मुसलमान में न? मुर्दे को शृंगार करते हैं। ऐसे लूँगिया लटकते (रखते हैं)। आहाहा! भाई! यह तो मिट्टी है न बापू! यह माँस का, हाड़ का है, चमड़ी ऐसे उतारो तो हड्डियाँ दिखे। अन्दर यह माँस का पिण्ड और लट पड़ी है। उसके भिन्न-भिन्न (भाग करके) एक बर्तन में हड्डियाँ, एक बर्तन में माँस, एक बर्तन में बाल, और एक बर्तन में खून, ऐसे पाँच भाग करे। इसके और आत्मा के भाग करे तो... आहाहा! उसमें एक ओर ज्ञान, एक ओर आनन्द, एक ओर शान्ति-चारित्र, एक ओर श्रद्धा, एक ओर स्वच्छता, निर्मलता, स्वसंवेदनता प्रभुता आदि अनन्त गुण पड़े हैं अन्दर। समझ में आया?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ क्या दिखता है? धूल दिखती है। यह नहीं दिखता? यह

पसीना निकलता है। नहाकर जरा बैठा हो, वहाँ मलमल ऊँचा-ऊँचा शर्ट-बर्ट पहना हो वहाँ गन्ध दे। शाम को उतार डाले। धूल-मिट्टी है, उसकी तुझे रुचि हो गयी, क्या है ? ऐसा कहते हैं। यह रुचि बदलाते हैं, हों! यह शरीर कहीं तुरन्त छूट नहीं जाता। राग भी नहीं छूटता। राग आसक्ति होती है। समकिती हो, गृहस्थाश्रम में तीर्थंकर थे, छियानवें हजार स्त्रियाँ से विवाह किया था, रुचि नहीं थी। मुझे मेरी शान्ति मुझमें भासित होती है। मुझे कहीं भासित नहीं होती। मेरी शान्ति मुझे कहीं भासित नहीं होती, कहीं शरीर में, राग में कहीं भासित नहीं होती - ऐसे सम्यग्दृष्टिपने में आत्मा की रुचि होती है, उसे पर की रुचि टल जाती है। उसके लिये यह बात करते हैं।

मुमुक्षु : आपकी प्रस्तुति ही ऐसी होती है कि तत्काल वैराग्य आ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु प्रस्तुति तो है और दिखता भी है या नहीं ? देखो न यह ? आहाहा! सड़ा हुआ दिखायी दे। ओहोहो! नहीं कहा था ? शरीर ऐसे गन्ध मारे, हों! गधा गन्ध मारे ऐसा गन्ध मारता था। वहाँ वावड़ी में एक बार गये थे। वावड़ी। मांगलिक सुनाओ। परन्तु गन्ध मारे, गधा जैसा गन्ध मारे। मरने की तैयारी परन्तु सुभट के पुत्र को... स्त्री कहती है, नियम ले लें, हों! अब रात्रि को मरना है। यह महाराज आज ही आये हैं, हों! ये सबेरे तो चले जायेंगे। अभी नहीं, आज वार-कवार है। आहाहा! परन्तु दुनिया इस मिट्टी के प्रेम की रुचि और यह आसक्ति ऐसी सेवन की है कि यह छोड़ी नहीं जाती। कौन जाने इसमें से कदाचित् जीवता खड़ा होऊँ तो ? तो यह नियम बाधक होगा। हाय.. हाय..! परन्तु मार डाला है न जगत को। माया मोह पर में मेरापन मानकर और भगवान आत्मा को स्वयं भूल गया है। समझ में आया ? यह सब भूल-भूलैया बताते हैं। भोजन, अरे! वस्त्र अच्छा पहना हो, लो न! गन्ध मारे। **अपवित्र घिनावने..** ऐसे घिनावने हो जाते हैं।

ऐसा वह शरीर हमेशा भूख प्यास.. बराबर आहार न मिले, प्यास लगे। **आदि संतापोंकर सहित है।** संताप। घड़ीक में ऐसे धूल का पिण्ड ठीक से रोटी न मिले तो सूख जाये। कैसे है ? बापू! कुछ रुचि नहीं होती, शरीर में ठीक नहीं आता। दूसरा कुछ दिखता नहीं परन्तु रुचि नहीं होती, कौन जाने ? मुँह के सामने आवे वहाँ उल्टी होती है। आहाहा! ऐसा सन्ताप का कारण शरीर, उसे तू आत्मा मानकर, अपना मानकर बैठा, तेरी कितनी

भूल! समझ में आया? सहजात्मस्वरूप भगवान आत्मा जो अनादि शान्तरस का कन्द है, उसका स्वामीपना छोड़कर उस जड़ का स्वामीपना (करना), वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जब वह ऐसा है, तब उसको पवित्र अच्छे-अच्छे पदार्थों से.. देखो! **भला बनाने के लिये..** बराबर खिलाओ, पिलाओ... श्रीखण्ड, पूड़ी, अरबी के भुजिया.. ऐसे। आहाहा! मखमल का गद्दा, शरबत मखमल बिछाया हो, ऐसे भाईसाहब सोते हों। भाई! तेरा व्यर्थ में काल जाता है, हों! तुझे एकत्वबुद्धि में बहुत पाप बँधता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **आकांक्षा करना व्यर्थ है,..** ऐसे धूल जैसे पदार्थ के, पवित्र मन को अपवित्र बनावे ऐसे **भला बनाने के..** उसे अच्छा करने के लिये।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका? ....दूध, घी तो सड़ जाता है, लटें पड़ी हैं। दूध, घी खानेवाले को देखा है। ऐसे लटें पड़ी हुई। ऐसे जहाँ करे, वहाँ पच्चीस-पचास लटें पड़े। क्या हुआ? सिर का दर्द था अवश्य, रात्रि को दर्द उठा था। माँस की लटें हो गयी। समझ में आया? ऐसा किया वहाँ पच्चीस-पचास लटें (पड़ी)। वहाँ कोई अमृत पड़ा है, वह निकले उसमें से? ऐई! पोपटभाई!

कहा न? एक मनुष्य को उल्टी आयी, उल्टी। विष्टा का पिण्ड था न अन्दर का? यह, यह है न? यह क्या कहलाता है? आँत लम्बी है न बड़ी? पेशाब निकलने का और यह सब हड्डियाँ हैं और वहाँ क्या है? आत्मा कहाँ वहाँ था, आत्मा तो भिन्न चीज़ है अन्दर। ऐसे उल्टी आयी, वहाँ इतनी विष्टा की गाँठ मुँह से निकली। जो नीचे निकलना हो, वह मुँह में निकली। इतना निकला, वह अन्दर वापस जाये नहीं और बाहर निकले नहीं। आहाहा! यह दामनगर में बना था। आनन्दजी का ससुर। आनन्दजी के ससुर को बना था। हमने तो सब सुना हुआ, निर्णय किया और देखा है न। दामनगर। ऐसे उल्टी हुई, वह तो पहले गुजर गया, परन्तु सुना था। कठिनाई से बाहर मल की गाँठ ऐसी निकली। बहुत उल्टी हुई थी, आँत यहाँ ऐसे (लटकती थी)। बापू! यह कहाँ अमृत है, भाई! तुझे खबर नहीं। यह तो अनन्त रजकण का कन्द / पिण्ड है। तू तो अरूपी आनन्दकन्द भिन्न चीज़

है। ऐसे आत्मा के ज्ञान और भान बिना उसके लिये उपाय करना वह व्यर्थ है, ऐसा कहते हैं।

कारण कि किसी उपाय से यदि उसका एकाध अपाय दूर भी किया.. कोई रोग आया और दवा से एकाध दूर किया। **जाय तो क्षण-क्षण में दूसरे-दूसरे अपाय आ खड़े हो सकते हैं।** एक जाये वहाँ दूसरा, एक साँधे वहाँ तेरह टूटे, ऐसी कहावत है न अपने या नहीं ? धूल में क्या हो ? वह तो अठारह टेढ़ापन है शरीर में। भगवान तो महा आनन्द का कन्द है। यह रुचि कराने को बात करते हैं, हों! यह इष्टोपदेश है। आहाहा! तेरी नजर में अन्तर है, भगवान! जहाँ नजर आत्मा में शान्ति है, उसकी नजर करनी चाहिए, उसके बदले इसमें-धूल में, भोग में नजर करता है, तेरी काँक्षा व्यर्थ-व्यर्थ जाती है। एक अपाय टले अन्दर, वहाँ दूसरा खड़ा होता है; दूसरा टले, वहाँ तीसरा खड़ा होता है। कहो, समझ में आया इसमें ? कहीं सुख नहीं इसमें, इसलिए रुचि छोड़ दे - ऐसा कहते हैं। अजीव जड़ मिट्टी के द्रव्य, गुण और पर्याय अजीव है। अजीव का द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसके गुण अर्थात् रंग, गन्ध और अवस्था, सब अजीव, तीनों अजीव हैं। उस अजीव को अपना जीव मानना, इसका नाम मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य, गुण और पर्याय यह क्या कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह द्रव्य-गुण-पर्याय क्या कहा ? पहला संक्षिप्त हुआ, इसलिए (कहते हैं)। ये रजकण है न ? मूल रजकण है, उन्हें भगवान द्रव्य कहते हैं। उनमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श गुण भरे हैं, उन्हें गुण कहते हैं और यह उनकी अवस्था है, यह अवस्था दुर्गन्ध, सुगन्ध, कोमल, यह सब पर्याय कही जाती है परन्तु इस ज्ञान के बिना भान नहीं होता। वीतराग क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती। द्रव्य-गुण-पर्याय जड़ का क्या, आत्मा का क्या ? अन्ध पड़ा ऐसे का ऐसे। ऐ.. मोहनभाई! आहाहा!

यह कहते हैं कि जड़ की पर्याय भिन्न, बापू! तेरी पर्याय भिन्न और उसकी पर्याय भिन्न। भाई! तुझे क्यों रुचि है ? आहाहा! वह धोखा देगी, भाई! क्षण में चला जायेगा। हाय.. हाय.. मैंने कुछ किया नहीं। मैंने कुछ किया नहीं। मेरी जिन्दगी ऐसी की ऐसी गयी। मरते हुए रोयेगा, हों!

एक व्यक्ति बनिया होशियार था। मरते हुए देखने जाये सब। गाँव में होशियार कहलाये और सब काम ऐसे (किये हुए)। मरने के समय देखने जाये तो ऐसे रोता था। रोने का हेतु यह कि अर..र..! कुछ किया नहीं। इस जगत के बड़प्पन-महत्ता और सेठाई में तो मर ही गया इसमें। मैंने मेरा कुछ किया नहीं। सेठाई या बड़प्पन या अधिपति या... सेठ हूँ और धूल का सेठ हूँ... मर गया परन्तु उसी और उसी में। समझ में आया? एक बार इस चैतन्य का सेठ हो, कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शान्त, आनन्द का रस है, उसकी रुचि कर। इसके लिये यहाँ इष्टोपदेश है।

दोहा – शुचि पदार्थ भी संग ते, महा अशुचि हो जायँ।
विघ्न करण नित काय हित, भोगेच्छा विफलाय।।१८।।

श्लोक रखा, श्लोक। **शुचि पदार्थ**—यह अच्छे-अच्छे निर्मल पदार्थ इसके (शरीर के) संग से **महा अशुचि हो जायँ।** मौसम्बी का दो सेर पानी डाले, एक क्षण में पेशाब हो जाये। समझ में आया। उस नारियली में यदि नीचे पानी डाले तो नारियल में ऊँचे मीठा पानी चढ़े। हों! देखा! नारियली होती है न? नारियली। इस जंगल में बहुत तृषा लगी हो और नारियल होवे तो यह उसका गन्दा पानी हो और गन्दला वह भी इसे नारियल में, उसमें नीचे डाले, क्या कहलाता है? उसके मूल में, तो पानी एकदम नारियल में चढ़ जाये और मीठा हो जाये। इसमें (शरीर में) यदि पानी डालो तो पेशाब हो जाये। अच्छे में अच्छा पानी डालो, हों! मौसम्बी! पेशाब हो जाये। उसमें वहाँ पानी डाले, गन्दला पानी हो, दो घड़ी हो, वहाँ ऊपर नारियल में पानी दो-चार नारियल फोड़े और तृषा लगी हो, पियो, वह मशीन ही अलग प्रकार की है, कहते हैं।

शुचि पदार्थ भी संग ते, महा अशुचि हो जायँ। है? **विघ्न करण..** विघ्न का करण। बिना ठिकाने का है परन्तु प्रेम नहीं छोड़ता। पूरे दिन इसकी सम्हाल.. सम्हाल.. सम्हाल.. सम्हाल.. सम्हाल.. सबेरे से उठे, वह.. क्या कहलाता है? टाइमटेबल हो सब। उठा तो नहाना, धोती ऐसे पहनना, पटली ऐसे करना, फिर ऐसे करना, फिर यहाँ मशीन डालना। अभी तो बहुत शीघ्र हो गया है देखो न! छोटे लड़के सब हाथ में रखते हैं, क्या कहलाता है वह? माँग एक यहाँ से पाड़े, एक यहाँ से पाड़े और एक यहाँ पाड़े। पहले ऐसा

कुछ नहीं था। बालों का गुच्छा था गुच्छा। ऐसे गोल। या वह था, क्या कहलाता है वह? टेडी बस! टेडी और गुच्छा दो थे। पचास-साठ वर्ष पहले। अभी तो तृष्णा की अधिकता है, उसको एक यहाँ देखे, इंडिपेंड चाहिए, एक यहाँ घड़ियाल चाहिए, एक यहाँ साथिया के लिये चाहिए, कपड़ा पचास-पचास वार का। एक-एक वार का पचास रुपये का वार। ऐसा कपड़ा। अब यह वैभव भोगना और खर्च करने में फिर लूटना कहीं से, लूटे बिना पूरा हो नहीं। आहाहा! धीरुभाई! इत्र की शीशियाँ कैसी रखे? ऐसी ऊँचे में ऊँची रखे, ऊँचे में ऊँची। कपड़े में ऐसे डाले चारों ओर। कपड़ा होवे न? उसके चार छोर होवे न? छोर में जरा डाले, इसलिए छोर ऐसे-ऐसे हिले तो सुगन्ध आती जाये। यहाँ डाले तो बराबर ठीक न रहे। छोर होवे न चार? यह तुमने नहीं देखा। हमें तो सब खबर है। अभी एक भाई नहीं था वहाँ अपने? वेणीभाई बख्शी। तीन-तीन, चार-चार कोस प्रतिदिन चलते थे परन्तु हमारे सामने देखे, मिले फिर दर्शन करके चरण-स्पर्श करे परन्तु उसके छोर बराबर ऐसे डाले हुए हों, ऐसे-ऐसे होवे न छोर? वह स्वयं को सुगन्ध भी आवे और हे.. य! आहाहा! गजब! मार डाला, कहा। यहाँ चौपड़ा हो तब तो वहाँ वार, परन्तु यहाँ छोर में अधिक डाले। खुला छोर होवे न कोट का या कढ़िया का, वहाँ डाला हो। ऐसे इस्त्री टाईट हो कपड़ा। हों! और उसमें यह इत्र डाला हो थोड़ा सा।

मुमुक्षु : जवान मनुष्य था?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वृद्ध था। वह तो वृद्ध था। बख्शी था। शरीर ऐसा था। प्रतिदिन छह मील चले तो ठीक रहे। छह मील... व्याख्यान में आता था। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो हमारे जगत के सब नाटक देखे हुए हैं न! आहाहा!

विघ्न करण नित काय हित,.. अरे! विघ्न के करनेवाला जो इस काय के हित के लिये भोगेच्छा जो करता है, वह विफल है। तेरे लिये कुछ फलदायक नहीं, नुकसान है। अब शिष्य ने प्रश्न किया।

उत्थानिका – फिर भी शिष्य का कहना है कि भगवन् काय के हमेशा अपायवाले होने से यदि धनादिक के द्वारा काय का उपकार नहीं हो सकता, तो आत्मा का उपकार तो केवल उपवास आदि तपश्चर्या से ही नहीं बल्कि धनादि पदार्थों से भी हो जायगा।

आचार्य उत्तर देते हुए बोले, ऐसी बात नहीं है। कारण कि –

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्याऽपकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम्।।१९।।

अर्थ – जो जीव (आत्मा) का उपकार करनेवाले होते हैं, वे शरीर का अपकार (बुरा) करनेवाले होते हैं। जो चीजें शरीर का हित या उपकार करनेवाली होती हैं, वही चीजें आत्मा का अहित करनेवाली होती हैं।

विशदार्थ – देखो जो अनशनादि तप का अनुष्ठान करना, जीव के पुराने व नवीन पापों को नाश करनेवाला होने के कारण, जीव के लिये उपकारक है, उसकी भलाई करनेवाला है, वही आचरण या अनुष्ठान शरीर में ग्लानि शिथिलतादि भावों को कर देता है, अत: उसके लिये अपकारक है, उसे कष्ट व हानि पहुँचानेवाला है। और जो धनादिक हैं, वे भोजनादिक के उपयोग द्वारा क्षुधादिक पीड़ाओं को दूर करने में सहायक होते हैं। अत: वे शरीर के उपकारक हैं। किन्तु उसी धन का अर्जनादिक पापपूर्वक होता है। व पापपूर्वक होने से दुर्गति के दु:खों की प्राप्ति के लिये कारणभूत है। अत: वह जीव का अहित या बुरा करनेवाला है। इसलिये यह समझ रखो कि धनादिक के द्वारा जीव का लेशमात्र भी उपकार नहीं हो सकता। उसका उपकारक तो धर्म ही है। उसी का अनुष्ठान करना चाहिये।

दोहा – आतम हित जो करत है, सो तन को अपकार।
जो तन का हित करत है, सो जियको अपकार।।१९।।

अथवा काय का हित सोचा जाता है, अर्थात् काय के द्वारा होनेवाले उपकार का विचार किया जाता है। देखिये कहा जाता है कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' शरीर धर्म–सेवन का मुख्य साधन–सहारा है। इतना ही नहीं, उसमें यदि रोगादिक हो जाते हैं, तो उनके दूर करने के लिये प्रयत्न भी किये जाते हैं। काय के रोगादिक अपायों का दूर

किया जाना मुश्किल भी नहीं है, कारण कि ध्यान के द्वारा वह (रोगादिक का दूर किया जाना) आसानी से कर दिया जाता है, जैसा कि तत्त्वानुशासन में कहा है – 'यत्रादिकं फलं किंचित्।'।।१९।।

गाथा - १९ पर प्रवचन

उत्थानिका–फिर भी शिष्य का कहना है कि भगवन्! काय के हमेशा अपायवाले होने से.. शरीर के लिये तो आपने कहा, वह ठीक है। शरीर हमेशा अनर्थकारक होने से **यदि धनादिक के द्वारा काय का उपकार नहीं हो सकता,..** लक्ष्मी द्वारा शरीर का तो उपकार हो, ऐसा नहीं लगता। वह तो सड़ा हुआ, दुर्गन्ध.. परन्तु **आत्मा का उपकार तो केवल उपवास आदि तपश्चर्या से ही नहीं बल्कि धनादि पदार्थों से भी हो जायगा।** परन्तु आत्मा का उपकार धर्म करें, उपवास करें और लक्ष्मी से भी दान दें तो आत्मा का उपकार होता है, इसलिए तो धर्म को–धूल को कुछ अच्छा कहो, ऐसा कहता है। तुम तो लक्ष्मी का अपवाद ही करते हो। दो–पाँच लाख मिले, धूल मिली और... ऐई! शिष्य कहता है।

मुमुक्षु : .....पैसा मिले, तब तो मन्दिर तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में। मन्दिर मन्दिर की जगह हो, उसमें तुझे क्या है? आहाहा! प्रश्न स्पष्ट करते हैं, सुनो! कहते हैं कि इस काया के लिये लक्ष्मी तो भले अनर्थ का कारण हो। क्योंकि उसमें लक्ष्मी का चाहे जितना उपयोग करो तो दुर्गन्ध होती है, वह होती है, इसलिए कुछ उसका लाभ नहीं है परन्तु यह लक्ष्मी और अपवास दो करें, अपवास से कहें तो आत्मा को लाभ हो और धनादि से धर्म हो। धनादि से तो आत्मा का उपकार होता है या नहीं? शरीर को भले उपकार न हो, चलो। शरीर बिगड़ जाये, सड़ जाये, आपने बात की वह बराबर है परन्तु यह लक्ष्मी होवे तो आत्मा का उपकार होता है या नहीं? पाँच–पच्चीस लाख हों, मन्दिर बनावें, वह करावें, दान दें, अमुक (करें), तो यह लक्ष्मी उपकार करती है या नहीं? शिष्य प्रश्न करता है।

नहीं, नहीं सुन न! धूल क्या आत्मा का उपकार करेगा? तब तो निर्धन को रोना

पड़ेगा, पैसेवाले को पैसे से धर्म हो तो निर्धनतावाले को रोना पड़ेगा, पैसा खोजना पड़ेगा। ऐसा नहीं है। धीरुभाई! यहाँ तो सबकी गर्दन पकड़ी है। **केवल उपवास आदि..** तो नहीं। ऐसा कि भले जब आत्मा अपना धर्म शान्ति से करे, मुनिपना ले, आत्मा का ध्यान करे, उससे आत्मा को लाभ हो और लक्ष्मी से भी लाभ हो। ध्यान से भी लाभ हो और लक्ष्मी से भी लाभ हो। धन और ध्यान दोनों से आत्मा को उपकार है, ऐसा पूछता है, भाई! क्या पूछा? कि शरीर के लिये तो लक्ष्मी काम की नहीं है, निन्द्य है, आपकी बात सत्य है। शरीर तो रोग का घर है, उसमें कुछ लक्ष्मी काम नहीं करती परन्तु आत्मा का ध्यान करे, आनन्दस्वरूप है, इससे भी लाभ हो और लक्ष्मी आवे, उसका धन हो पाँच-पचास लाख तो धर्मध्यान मदद की जाये, लक्ष्मी खर्च की जाये, पाँच, दस लाख दिये जायें, कोई प्रौषध करता हो उसे... क्या कहलाता है? प्रभावना की जाये, ऐसा हो। उससे कुछ आत्मा का उपकार होता है या नहीं?

केवल उपवास आदि तपश्चर्या से ही नहीं.. ऐसे कि आत्मा के ध्यान से तो मात्र उपकार नहीं परन्तु **धनादि पदार्थों से भी हो जायगा।** ऐसा कहते हैं, भाई! दो बातें। इससे होगा। आत्मा अपने स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान करे, ध्यान करे तो भी आत्मा को लाभ होगा और लक्ष्मी मिली हो, पाँच-पचास लाख तो भी लाभ होगा। आत्मा को दो लाभ होंगे लो! सुन.. सुन!

आचार्य उत्तर देते हुए बोले, ऐसी बात नहीं है। कारण कि-

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्याऽपकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम्।।१९।।

अर्थ- आहाहा! **जो जीव (आत्मा) का उपकार करनेवाले होते हैं, वे शरीर का अपकार (बुरा) करनेवाले होते हैं।** ध्यान रखना जरा। जो आत्मा का उपकार करनेवाले धर्मध्यान हैं, आत्मा का ध्यान-धर्मध्यान आत्मा का उपकार होगा, वह शरीर का अपकार करेगा अर्थात् शरीर शिथिल पड़ जायेगा। ग्लानि आदि निमित्त हों उसमें। आत्मा में अन्दर श्रद्धा, ज्ञान, ध्यान करे तो इस आत्मा का उपकार होगा, शरीर को अपकार होगा, शरीर गल जायेगा, शिथिल पड़ जायेगा, ढ़ीला होगा। इसका (आत्मा का) उपकार हो, वह इसे (शरीर को) अपकार हो।

जो चीजें शरीर का हित या उपकार करनेवाली होती हैं,.. देखो! जो चीज़ दाल, भात, सब्जी, लक्ष्मी आदि से इस शरीर का खाना-पीना, सामग्री, शृंगार करे, **वही चीजें आत्मा का अहित करनेवाली होती हैं।** शरीर का उपकार वह आत्मा का अपकार; आत्मा का उपकार, वह शरीर का अपकार। विस्तार करते हैं, हों! यह तो शब्द रखे हैं। आत्मा का हित अन्दर शरीर आदि की दरकार किये बिना, आत्मा की दरकार से आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान करे, धर्मध्यान करे तो आत्मा को उपकार होता है, परन्तु शरीर को अपकार होता है। उसका ध्यान करे नहीं अर्थात् ध्यान रखे नहीं। शरीर शिथिल पड़ जाये, ग्लान हो जाये, रोग हो जाये आदि हो जाये अर्थात् शरीर को अपकार हो। अपकार के निमित्त की बात है, हों! सब निमित्त की बात है। पाठ में निमित्त शब्द है, हों! दोनों में निमित्त है, देखो! '**ग्लान्यादिनिमित्तत्वात्**' है अन्दर? '**निमित्तत्वात्**' है, हों! '**दुःखनिमित्तत्वादपकारकं स्यादतो...**' निमित्त की व्याख्या यहाँ तो बताते हैं, भाई! है अन्दर संस्कृत। दोनों जगह है। धर्म करे तो आत्मा को उपकार होता है। उपवास अर्थात् आत्मा में रहना, ऐसा। उपवास अर्थात् आत्मा के समीप में, आत्मा आनन्द है, उसके समीप में रहना। उससे आत्मा को लाभ होता है। उपवास अर्थात् मात्र लाँघन अपवास-बपवास करे, उसमें कुछ नहीं होता। समझ में आया? इसलिए शरीर को नुकसान होता है, नुकसान का निमित्त होता है, ग्लानि हो, शिथिल पड़ जाये, जीर्ण हो, दरकार न हो। आत्मा के ध्यान से उसे लाभ होता है तो इसे (शरीर को) नुकसान होता है।

जो चीजें शरीर का हित या उपकार करनेवाली होती हैं,.. निमित्त, हों! सब। शरीर का निमित्त वह। लक्ष्मी आदि हित अर्थात् निमित्त। वह शरीर का उपकार करनेवाली चीज़ निमित्तरूप से है, वह चीज़ आत्मा को अहित करनेवाली है। यह लक्ष्मी आदि आत्मा को अहित करनेवाली है, अहितकर दुःख में निमित्त है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह लक्ष्मी आदि जो शरीर को अनुकूल निमित्त है, वह आत्मा को नुकसान के लिये निमित्त है। आहाहा! वह लक्ष्मी मेरी, हम देते हैं। मूढ़ है, कहते हैं, मिथ्यादृष्टि है। श्वास निकल जाये, ऐसा है इसमें। पोपटभाई! अन्यत्र कहीं सुख नहीं है, कहीं शान्ति नहीं है, मर जाये तो भी।

इस लक्ष्मी से शरीर को ठीक लगे। रोटियाँ मिले, दाल मिले, रोग मिटे, डॉक्टर-बॉक्टर आवे, वह आत्मा को अहितकर है। क्योंकि वहीं का वहीं तृष्णा और राग, लक्ष्य

रहा करता है, वह आत्मा को नुकसान करनेवाला है। लक्ष्मी कमाने में भी नुकसान और प्रयोग करने में भी नुकसान। प्रयोग करने में लक्ष्य, राग करे कि मैंने खर्च किया, मैंने दिया और मैंने खर्च किया और मैंने किया, वह अभिमान मिथ्यादृष्टि का है। आहाहा! घात करता है, भाई! तुझे खबर नहीं है। इस लक्ष्मी से आत्मा को जरा भी लाभ नहीं होता। इस शरीर को भले हो। दाल, भात मिले, रोटियाँ मिले, कोमल सोने का (बिछौना) मिले, पैसा हो तो गद्दी मिले, कोमल सुकोमल मिले। कहते हैं कि वह तेरे आत्मा के लिये नुकसानकारक है। नुकसान के निमित्त की बात है, हों! धीरुभाई! गजब बातें की, भाई! इस इष्टोपदेश में... भाई! उस जड़ से तेरी चीज़ भिन्न है तो कोई शरीर से भी तुझे लाभ नहीं होगा, तथा लक्ष्मी से भी तुझे जरा भी लाभ नहीं होगा। समझ में आया? लक्ष्मी से जरा भी लाभ नहीं होगा, तुझे नुकसान का निमित्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अपेक्षा से बात की है। नुकसान का कारण वह राग है। वह नुकसान का कारण है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। राग है न? यह बात तो फिर जब अमुक बात कहनी हो, तब (कही जाती है) यह तो लोभ जरा तीव्र होवे तो टूटे। उसमें आत्मा को क्या? आत्मा तो इच्छारहित चीज़ है। सच्चिदानन्द स्वरूप शुद्ध आनन्दकन्द की दृष्टि करने से आत्मा को लाभ है, बाकी धूल से कुछ लाभ-वाभ है नहीं। सब पाँच-पचास लाख के धूल के धनी सेठिया-बेठिया कहलाते हैं या नहीं? पैसे के सेठ, धूल के! उसमें आत्मा को कुछ लाभ नहीं है। ऐई मलूपचन्दभाई!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : चले गये, मर गये कुछ अब चले गये। वह गरासिया बेचारा आया था न? वह कहे कि बनिया छिपाना बहुत जानते हैं। उस बेचारे गरासिया को तो दस आवे और बारह जावे, बारह आवे और दस जावे। वह बेचारा कहता था। आया था न अभी? आनन्दपुर का दरबार नहीं? दो दिन पहले। मुश्किल से दो हजार की आमदनी हो वहाँ तीन हजार का खर्च रखे। लड़कियों को विवाह करे तो बड़ा अभिमान.. अभिमान, वे चारण-वारण चढ़ावे सिर पर। खाली कर डाले। घोड़ी-बोड़ी दे, मार डाले कि हमें। बनिया छुपाना बहुत जानते हैं। ममता जाने, कहा। वह आनन्दपुर का दरबार आया था न, वह

पति-पत्नी दो ही हैं, साधारण है। बेचारा पहले आया था, पाँच वर्ष पहले। कुछ नहीं होता। अभी तो गरासिया दु:खी हैं, कहता था। बनिये सुख हैं। कहा, झूठ बात है। पैसे से दु:खी, यह बात भी मिथ्या और बनिया पैसे से सुखी, यह बात भी मिथ्या। ऐई! आहा! देखो न! छह-छह महीने, बारह-बारह महीने से, आठ-आठ महीने से आते हैं यहाँ?

मुमुक्षु : उलझ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उलझ गया है बहुत। देखो! इसका लड़का। दो करोड़ रुपये वहाँ हैं, मुम्बई में। यहाँ आठ महीने से, छह महीने से आता नहीं।

मुमुक्षु : आयेगा.. आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आयेगा-बायेगा नहीं। वह तो नहीं आया अभी तक। नहीं तो छह महीने हो गये। वहाँ दिल्ली जाये और धूल जाये और भटका-भटक (करे) दो करोड़ सम्हालने के लिये मर जाये बेचारा। घट गये, पचास लाख सरकार (को) देने गया... दो करोड़ अभी है न, पूनमचन्दभाई के पास? दो करोड़ उनके पुत्र के पास, सरकार (को) पचास लाख देता था। तब कहे एक करोड़ लूँ। नहीं करोड़ नहीं लूँ, फरियाद करूँ। छह महीने, बारह महीने नियम निकाल डाला। धूल में भी नहीं, हैरान होकर मर जाता है। समझ में आया?

देखो! यहाँ कैसी शैली रखी है। इस शरीर को निमित्तरूप से अनुकूल है, वह आत्मा को दु:ख में निमित्तरूप है, ऐसा कहते हैं तथा आत्मा को जो सुखरूप है, आत्मा का ध्यान, श्रद्धा-ज्ञान आदि हैं, वे शरीर के निमित्त में प्रतिकूल होते हैं। शरीर में ध्यान न रहे, आहार-पानी कैसा है, धर्मध्यान-आत्मा के ध्यान में हो, उसे शरीर की कुछ दरकार नहीं और शरीर की दरकार नहीं, तथापि शरीर में होना हो, वह होता है परन्तु यहाँ तो दरकार नहीं, ऐसा निमित्तपना देखकर उसे नुकसानकारक बताया है। आहाहा! समझ में आया?

विशदार्थ – देखो जो अनशनादि तप का अनुष्ठान करना,.. अर्थात् मूल तो मुनिपना कहना है, हों!

मुमुक्षु : दोनों को सुख हो, ऐसा तीसरा रास्ता...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों को सुख हो, ऐसा तीसरा रास्ता नहीं है। नहीं, न्यालभाई गये

अभी बेचारे। धूल को सुख क्या होता होगा? वह तो मिट्टी है। उसे चैन है कुछ? वह तो जड़ है, मिट्टी है, मैं.. मैं.. मैं.. श्मशान की राख कहीं से इकट्ठी हुई, श्मशान की राख। आहा! बापू! तू आत्मा है न, प्रभु! शाश्वत् वस्तु है, अनादि है, नया है नहीं, नाश होवे - ऐसा नहीं। अनादि-अनन्त है—ऐसी चीज़ की तुझे रुचि और दृष्टि नहीं तथा इस नाशवान क्षणिक संयोगों का तुझे प्रेम है। वह प्रेम छुड़ाने के लिये, रुचि छुड़ाने के लिये बात करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : संयोग छुड़ाने की बात नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग कौन छोड़े? धूल छोड़े। उसे रुचि छुड़ाते हैं। आहाहा! भाई! परन्तु यह विचार भी कब किया है? समय कहाँ मिलता है लोगों को? पाप के कारण समय नहीं मिलता। ऐसा सुनने का और विचार करने का समय नहीं मिलता, मरने का समय मिलता है। यह कहे कि मुझे मरने का समय नहीं है। बापू! समय मिलेगा, तब तो टें.. होकर पड़ेगा ऐसे पलंग में। आहाहा! कुछ बेचैनी है, बेचैनी है... उठो! वहाँ भावनगर दरबार नहीं? बेचारे सुनते थे। खड़े हुए, मुझे असुख है, इतना बोले। असुख है इतना बोले, लो! रानी आयी। मुझे असुख है। रानी टेलीफोन करने गयी, यहाँ गये परभव में। छोटी उम्र थी, छोटी थी नहीं? ५३ वर्ष, ५३ वर्ष। अब वह तो लौकिक में आर्य मनुष्यरूप से नरम था। प्रजा के लिये लौकिक प्रिय था। हाय.. हाय..! रानी जहाँ आती है, वहाँ कुछ नहीं मिलता। क्या था धूल में? वह तो उसका जिस पल में पलटेगा, उसमें (कोई क्या करे)?

यह लालबहादुर लो न बेचारे! कहाँ गये थे? एक मिनिट में क्या हुआ कौन जाने? उन्होंने चाहे जो किया, फिर किसी ने दगा (किया) और ऐसी लोग बातें करते हैं। चाहे जो हो परन्तु वह आयुष्य पूरा होने का काल था। उसमें कोई आयुष्य पूरा करने में समर्थ है, कोई देव, देवी आकर और उसका आयुष्य तोड़ सके, तीन काल में लाभ किसी को नहीं है। उस स्थिति में उस काल में देह छूटना.. छूटना और छूटना ही है। भगवान के ज्ञान में आया था कि इस समय छूटेगा। उसमें कहीं तीन काल में देव और इन्द्र आवे तो भी बदल नहीं सकता। आहाहा!

यह तो मिट्टी की स्थिति है या नहीं? अवधि है इसकी। इस अवधि से आया है, अवधि पूरी होगी... एकदम..! भागा। मोरिया छूटा, फूटा। गाड़ा के नीचे मोरियो नहीं

रखते ? पानी का रखें न गाड़ा के नीचे ? उसमें कोई पत्थर बाधक हो तो फुं सब। यह गाड़ा जोड़ते हैं न ? पहले जोड़ते थे। पानी ऊपर तो रखे नहीं, इसलिए नीचे छीका रखे, उसमें कुछ डोरा-बोरा आ गया... (तो फूट जाये)। इसी प्रकार आत्मा ऊपर लटकता हुआ यह है, उसमें कहीं आयुष्य की स्थिति पूरी (हुई) तो फुं.. हो जायेगा। भगवान! तू तो शाश्वत् अनादि-अनन्त है। ऐसे अनादि-अनन्त को इस संयोग की चीज़ में तुझे इतनी रुचि की तू एकत्वरूप से भूल ही गया आत्मा को ? समझ में आया ?

जो जीव को उपवास आदि अन्तर के तप का अनुष्ठान करने से **जीव के पुराने व नवीन पापों को..** नाश होता है। **जीव के लिये उपकारक है,..** आत्मा का धर्म। **उसकी भलाई करनेवाला है,.. वही आचरण या अनुष्ठान शरीर में ग्लानि शिथिलतादि भावों को कर देता है,..** अर्थात् निमित्त है। वह आचरण और अनुष्ठान अर्थात् भाव, हों! शरीर में ग्लानि, शिथिलतादि का निमित्त कारण होता है। क्या कहा ? जो आत्मा अपने शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और ज्ञान में रमना चाहता है, उसे आत्मा के ध्यान का लाभ है, उसे आत्मा का लाभ होता है। परन्तु शरीर को नुकसान होता है क्योंकि शरीर पर उसका लक्ष्य (नहीं रहता)। उस अनुष्ठान से आत्मा को लाभ, उस अनुष्ठान से शरीर को निमित्तरूप से नुकसान का कारण होता है। निमित्तरूप से, हों! ग्लानि शरीर में होती है, शिथिल होता है, ढीला पड़ जाता है; इसलिए आत्मा के हित की चीज़, वह शरीर को अहित का कारण; शरीर को हित का कारण, वह आत्मा को अहित का कारण। चीज़ ही भिन्न है। समझ में आया ? विशेष बात करेंगे, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)